

# कृषि और पशुपालन

वर्ष-70

अगस्त - 2017

अंक : 02

प्रधान सम्पादक  
आनन्द श्रीपाठी



प्रभाची सहायक सम्पादक  
प्रेम कुमार सिंह

- इस पत्रिका में प्रकाशित लेख रजिस्टर्ड समाचार पत्रों तथा पत्र-पत्रिकाओं में बिना अनुमति के प्रकाशित किये जा सकते हैं, किन्तु इस पत्रिका का उल्लेख करना और जिस अंक में लेख उद्धृत किया जाय, उसकी एक प्रति सम्पादक के पास भेजना आवश्यक है।
- इस पत्रिका में प्रकाशित उन लेखों के लिए जो विभागों के बाहर के लेखकों द्वारा लिखे गए हैं या जो अन्य पत्र-पत्रिकाओं से उद्धृत किये गये हैं, को भी समाहित किया गया है।

वार्षिक शुल्क : ₹ 24.00

एक प्रति का मूल्य : ₹ 2.00

दूरभाष नम्बर : 0522-2781042

: प्रकाशक :

**ब्यूटो, कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश**  
9, विश्वविद्यालय मार्ग,  
लखनऊ

इस अंक में .....

कास एवं मोथा का रसायनों  
द्वारा खरपतवार नियंत्रण

5-6



ऊसर सुधार कार्यक्रम

7-9



एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन  
(आई.पी.एन.एम.)

10-11



एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन  
(आई.पी.एम.)

12-13



कार्यक्रम का मासिक कैलेण्डर

14-18



जैविक खेती को अपनाना  
आवश्यक क्यों ?

19-23



वर्षा ऋतु में पशुओं की  
महामारी-गलाघोट

24-26



# कृषि और पशुपालन

## सरम्पादकीय



कृषि, प्रदेश की अर्थव्यवस्था का मूलाधार है तथा लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या सीधे या परोक्ष रूप से कृषि और उससे सम्बन्धित गतिविधियों से जुड़कर जीवन यापन एवं रोज़गार प्राप्त करती है। राष्ट्रीय स्तर पर किसानों की आय की दृष्टि से 18 प्रमुख राज्यों में हमारा प्रदेश 13वें स्थान पर है। उत्तर प्रदेश में किसानों की औसत आय रु0 4623.00 है जबकि राष्ट्रीय औसत रु0 6426.00 प्रति माह है। पंजाब प्रान्त में औसत मासिक आय रु0 18059.00 है। स्पष्ट है प्रदेश के किसानों की आय वृद्धि किये जाने की दिशा में काफी कुछ किया जाना बाकी है। भौगोलिक गंगा और यमुना दोआब में अवस्थित प्रदेश की उर्वर भूमि, जल एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता को देखते हुए कृषि उत्पादन के विविध क्षेत्रों में अपार संभावनाएं विद्यमान हैं। उल्लेखनीय है कि भारत सरकार एवं प्रदेश सरकार द्वारा किसानों के उन्नयन तथा आय में सन् 2022 तक दोगुना वृद्धि करने का संकल्प लिया गया है। इस लक्ष्य को प्रति हेठले क्षेत्रफल में उत्पादकता वृद्धि करके, कुल उत्पादन में वृद्धि उर्वरक, कीटनाशक, श्रम, जल और अन्य उत्पादक कारकों का यथेष्ट प्रबन्धन कर, खेती की लागत में कमी करके और भण्डारण, परिवहन, प्रसंस्करण और विपणन सहित विभिन्न उत्पादक गतिविधियों का निष्पादन कर, प्राप्त किया जा सकता है। यह सच है कि मात्र धान, गेहूँ जैसे खाद्यानों के उत्पादन मात्र से ही किसानों की आय में वृद्धि पूरी तौर पर सम्भव नहीं है बल्कि इसके साथ बागवानी, सब्जियों, फलों की खेती, पशुपालन, कुकुट पालन, मौन पालन, मत्स्य पालन, कृषि वानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण आदि को भी समाहित किया जाना अपरिहार्य है। साथ ही जरूरी है इन उत्पादों के विपणन की समुचित व्यवस्थायें सुनिश्चित कराते हुए कृषकों को अपने उत्पादों का उचित मूल्य प्राप्त हो। इसके लिए भारत सरकार द्वारा ई-मार्केटिंग की सुविधा की व्यवस्था की गयी है तथा प्रदेश की अधिकांश मंडियों को इससे जोड़ दिया गया है ताकि किसान अपने उत्पादों का प्रतिस्पर्धी दरों पर विपणन कर, अधिकाधिक आय अर्जित कर सकें। प्रदेश सरकार द्वारा 'सबका साथ, सबका विकास' के मूल मंत्र के साथ कृषि और किसानों को विकास की दूरी मानकर प्रदेश के 86 लाख किसानों के रु0 36000 करोड़ ऋणों को मोचित किया गया है। यह कदम सरकार के कृषकोन्मुख संवेदनशील तथा उनके सुख-दुःख से सम्पूर्ण होकर उत्पादन बढ़ाकर कृषि को लाभकारी उद्यम के रूप में विकसित कर, अपनी आय वृद्धि की दिशा में संकल्पित एवं समर्थ हो सकें।

५८/२

(आनन्द श्रिपाठी)  
संयुक्त कृषि निदेशक

# **कॉस एवं मोथा का रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण**

**कॉस के रसायनिक नियंत्रण की तकनीक :** उत्तर प्रदेश में कॉस से प्रभावित सर्वाधिक क्षेत्रफल बुन्देलखण्ड एवं तराई का भाग है। इन क्षेत्रों में इस खरपतवार से फसलों की वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है तथा पैदावार में भारी कमी हो जाती है। खरीफ की बुवाई में भी कठिनाई होती है।

कानपुर कृषि विश्वविद्यालय में चल रहे अखिल भारतीय समन्वित खरपतवार नियंत्रण योजना के अन्तर्गत फसल शोध प्रक्षेत्र, वेलाताल हमीरपुर, किये गये परीक्षणों के आधार पर इस खरपतवार के नियंत्रण हेतु सफल तकनीकी का विकास किया गया है। इन प्रयोगों में ग्लाइफोसेट नामक रसायन बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ है। इस तकनीक की विस्तृत जानकारी निम्नलिखित है :-

## **(क) नियंत्रण तकनीक :**

- वर्षा ऋतु के प्रारम्भ अर्थात् जुलाई में खेत की गहरी जुताई कर देते हैं। इसके बाद डिस्क प्लाऊ द्वारा जुताई करते हैं। जिससे बड़े-बड़े ढेले टूट जाते हैं एवं कॉस के राइजोम (भूमिगत तने) ऊपर आ जाते हैं तथा कुछ हद तक टुकड़ों में कट जाते हैं।
- इस प्रकार उखड़े हुए भूमिगत तनों को निकाल कर इकट्ठा कर जला दिया जाता है, जिससे उनका वानस्पातिक प्रसारण पुनः न हो सके।
- समय हो तो पाटा लगा देना चाहिए तथा खेत को खाली छोड़ देना चाहिए।
- उपरोक्त क्रिया के 35-40 दिन के बाद जब कॉस के नये पौधे तीव्र वृद्धि की अवस्था में (6.8 पत्तियों) अग्रसर हो तो ग्लाइफोसेट 41 प्रतिशत एस.एल. की 3.4 ली./हें. मात्रा 400-500 लीटर/हें. पानी में घोलकर फ्लैट फैन नाजिल से पर्णीय छिड़काव मध्य अगस्त से मध्य सितम्बर तक के खुले सूर्य के प्रकाश में करना चाहिए। यदि कॉस की गहनता भयंकर हो तो रसायन की मात्रा बढ़ाकर उसे 4 ली./हें. कर देनी चाहिए। इससे अच्छा परिणाम मिलता है। इस रसायन के छिड़काव के बाद कॉस की पत्तियों का रंग बदलने लगता है तथा 15-20 दिन में पौधे पूर्णतः सूख जाते हैं। यह रसायन कॉस के भूमिगत तनों तक पहुंचकर उसे समूल रूप से नष्ट कर देता है तथा पुनः नया पौधा भूमि से नहीं निकलता। किसी वजह से खेत के अन्दर कॉस के पौधे का जमाव हो जाय तो पुनः छिड़काव कर देना चाहिए।

## **(ख) फसलों की बुवाई :** रसायन प्रयोग करने के एक माह बाद फसलों की बुवाई की जा सकती है।

## **(ग) सावधानियाँ :**

- रसायन का प्रयोग कॉस की तीव्र वृद्धि की अवस्था 35-40 दिन पर करें।
- छिड़काव के बाद लगभग 6-8 घण्टे खुली धूप एवं पर्याप्त वायु मण्डल की आर्द्धता आवश्यक है।
- छिड़काव का उपयुक्त समय मध्य अगस्त से मध्य सितम्बर है।
- छिड़काव के समय हवा तेज न हो तथा हाथों में दस्ताने पहन कर ही छिड़काव करें।

**मोथा के रासायनिक नियंत्रण की तकनीक :** मोथा (साइप्रस रोटनडस) एक दुष्ट प्रकृति का खरपतवार है। इसके भूमिगत ट्यूबर जमीन के अन्दर लगभग 30-45 सेमी० तक फैले होते हैं। इन्हीं ट्यूबर से इसका प्रसारण तेजी से होता है। खुरपी आदि से निराई के बाद यह पुनः निकल आते हैं मोथा का प्रकोप ऊपरहार वाली भूमि में की गई फसलों में ज्यादा भयंकर होता है।

कानपुर कृषि विश्वविद्यालय के शस्य विज्ञान विभाग में चल रहे अखिल भारतीय समन्वित खरपतवार योजना के अन्तर्गत किये गये शोध कार्यों के उपरान्त ग्लाइफोसेट नामक रसायन का प्रभाव काफी लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इसका प्रयोग करने की तकनीकी निम्नलिखित है :-

1. जिस खेत में मोथा की गहनता हो उस खेत को वर्षा प्रारम्भ होने के पश्चात खाली छोड़ दिया जाय।
2. ग्लाइफोसेट 41 प्रतिशत की 4 ली./हें. मात्रा 400-500 लीटर पानी में घोल बनाकर मध्य अगस्त से मध्य सितम्बर तक मोथा की तीव्र वृद्धि की अवस्था पर छिड़काव किया जाय।
3. छिड़काव के बाद सभी खरपतवार 10-15 दिन में सूख जाते हैं। अगर मोथा का जमाव दिखाई दे तो पुनः एक छिड़काव स्पाट ट्रीटमेन्ट कर देना चाहिए।
4. छिड़काव के बाद एक माह तक खाली छोड़ दिया जाय, एक माह के अन्दर सभी खरपतार नष्ट हो जाते हैं तथा रसायन का भूमि में प्रभाव भी लगभग समाप्त हो जाता है। तत्पश्चात् इच्छानुसार अगली फसल तोरिया, आलू, गेहूं इत्यादि फसलें बोयी जाय।
5. उपरोक्त क्रिया से अगली फसल में मोथा का जमाव लगभग 85 से 97 प्रतिशत तक कम हो जाता है।
6. आवश्यकता महसूस होने पर पुनः छिड़काव (स्पाट ट्रीटमेन्ट) कर दिया जाय।

शोध कार्यों से यह भी साबित हुआ है कि लगातार 3-4 साल तक मोथा की गहनता वाले खेतों में दैचा तथा तिल की खेती की जाय तो इनकी गहनता में लगभग 50-60 प्रतिशत तक कमी आ जाती है। मक्का, अरहर तथा गन्ने के बीच में लोबिया की सहफसली खेती करने से भी मोथा की गहनता में काफी कमी आ जाती है।

#### **रसायन प्रयोग में साक्षात्कार :**

1. छिड़काव का उपयुक्त समय मध्य अगस्त से मध्य सितम्बर है। इस समय मोथा तीव्र वृद्धि की अवस्था में होता है तथा उपयुक्त तापक्रम एवं वायुमण्डल आदर्ता भी प्राप्त होती है।
2. छिड़काव खुली धूप में किया जाय तथा छिड़काव के बाद 6-8 घण्टे धूप का मिलना आवश्यक है।
3. छिड़काव खड़ी फसल में न किया जाय अन्यथा फसल नष्ट हो जायेगी।
4. छिड़काव के समय हवा तेज न हो तथा हाथों में दस्ताने पहन कर ही छिड़काव करें।



## ऊसर सुधार कार्यक्रम

ऊसर सुधार का कार्यक्रम मई के अंन्तिम अथवा जून के प्रथम सप्ताह से प्रारम्भ करना चाहिए। सर्वप्रथम खेत की जुताई करके उसकी मेडबन्दी कर लें। इसके उपरान्त जिप्सम की आवश्यक मात्रा को खेत में समान रूप से बिखेर कर लगभग 10 सेमी. गइराई तक मिट्टी में मिला दें। जिप्सम मिलाने के तुरन्त बाद खेत में पानी भर दें जो लगभग दो सप्ताह तक भरा रहना चाहिए। ध्यान रहे कि खेत में लगभग 10-15 सेमी. ऊंचाई में पानी अवश्य भरा रहे। ऐसा करने से ऊसर भूमि को घुलनशील लवण तथा सोडियम निचली सतहों में निकालित हो जाते हैं जिससे मृदा अम्ल अनुपात एवं पी.ए.च. कम हो जाता है।

ऊसर भूमि को सुधारने के लिए संस्तुत जिप्सम की आधी मात्रा तथा 10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद अथवा 10 टन प्रेसमड (सल्फीटेशन प्लान्ट) अथवा 10 टन फलाईऐस प्रति हेक्टेयर की दर से उपलब्ध होने की दशा में करें। यदि गोबर की खाद, प्रेसमड तथा फलाईऐस उपलब्ध न हो तो जिप्सम की संस्तुति की गई आधी मात्रा का प्रयोग करें। मृदा सुधारकों के प्रयोग के बाद रिक्लेमेशन को प्रक्रिया पूरी होने पर खरीफ में प्रथम फसल के रूप में धान की फसल लें।

खरीफ की फसल क्षारीयता की अपेक्षा लवणता से अधिक प्रभावित होती है, जबकि रबी की फसलें लवणता की अपेक्षा क्षारीयता से अधिक प्रभावित होती हैं। धान क्षारीयता को सह लेता है, परन्तु लवणता के प्रति उतना सहनशील नहीं है। ऊसरीली भूमि में दो-तीन वर्षों तक खरीफ में धान की अनवरत फसल ली जानी चाहिए, क्योंकि जैविक क्रिया के फलस्वरूप एक प्रकार का कार्बनिक अम्ल उत्पन्न होता है जो क्षारीयता को कम करता है साथ ही भूमि में सोडियम तत्व का अवशोषण अधिक मात्रा में होने से भूमि में विनियशील सोडियम की मात्रा कम हो जाती है और भूमि की भौतिक तथा रासायनिक गुणवत्ता में शनैः शनैः सुधार हो जाता है।

धान के बाद रबी में पहली फसल गेहूं की ली जानी चाहिए। यदि भूमि लवणीय हो तो जौं की फसल उपयुक्त होगी। गेहूं के बाद जायद में हरी खाद हेतु ढैंचा अवश्य बोना चाहिए। ताकि भूमि में जैविक कार्बन की उपलब्धता उच्च स्तर की हो जाये इस प्रकार सुधार के प्रथम वर्ष में धान-गेहूं ढैंचा का फसल चक्र अपनाना उपयुक्त होता है। सुधार के द्वितीय वर्ष से धान के बाद रबी में सरसों तथा गन्ने की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में सोडिक जमीनों में कृषि प्रारम्भ करने हेतु की जाने वाली संस्तुतियाँ :

### 1. दक्षिण पश्चिम अर्द्ध शुष्क मैदानी क्षेत्र हेतु

ऊसर जमीन के प्रारम्भिक वर्षों हेतु : धान-सरसों-हरी खाद फसल-चक्र के क्रम में धान-गेहूं-हरी खाद फसल-चक्र

### 2. पूर्वी मैदानी क्षेत्र हेतु : धान-सरसों-हरी खाद फसल-चक्र के क्रम में धान-गेहूं-हरी खाद फसल-चक्र।

### 3. मध्य मैदानी क्षेत्रों की ऊसर भूमि सुधार के प्रारम्भिक वर्षों हेतु

(i) धान-सरसों-हरी खाद फसल-चक्र के क्रम में धान-बरसीम-सूरजमुखी फसल-चक्र।

(ii) अर्ध सुधारित ऊसरीली जमीनों (आंशिक सुधारी गई) हेतु धान-गोभी-सूरजमुखी फसल-चक्र के क्रम में धान-आलू-मूँग फसल-चक्र।

ऊसर सुधार की सस्ती तकनीकी विकसित करने की दृष्टि से उत्तर प्रदेश के विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में निम्नलिखित सुधारकों का मिश्रण संस्तुत किया जाता है।

1. दक्षिण पश्चिमी अर्द्ध शुष्क मैदानी क्षेत्र हेतु : जिप्सम दर 50% की जी.आर. के अथवा जिप्सम दर 25% जी.आर. + एफ.वाई.एम. 10 टन / हे.।
2. उत्तरी मैदानी क्षेत्र तथा मध्य मैदानी क्षेत्र हेतु जिप्सम दर 25% जी.आर. + एफ.वाई.एम. 10 टन / हे.।

**ऊसरीली भूमि में धान की खेती में बरती जाने वाली सावधानियाँ :**

1. **उपयुक्त प्रजाति का चयन करें :** क्षारीय भूमि के लिए धान की संस्तुत झोना-349, साकेत-4, ऊसर धान-1, नरेन्द्र ऊसर धान-2, नरेन्द्र ऊसर धान-3, नरेन्द्र ऊसर धान-13, नरेन्द्र ऊसर धान-2008, सी.एस.आर.-10 और जया किस्में उपयुक्त हैं। सरजू-52, आई.आर-8 और जया की भी खेती लवणीय भूमि में की जा सकती है।
2. **नर्सरी अच्छी भूमि में उगाई जाय :** धान की नर्सरी को सामान्य अच्छी भूमि में संस्तुत सघन पद्धति के अनुसार उगाना चाहिए क्योंकि नई तोड़ी गई ऊसरीली भूमि में शुरू के 2-3 वर्षों में धान की पौध अच्छी नहीं होती है।
3. **समय से रोपाई :** रोपाई समय से करें अर्थात ऊसर-1, 2 एवं सी-एस-आर-10 की रोपाई 10 जुलाई, साकेत-4 की रोपाई 30 जुलाई तक अवश्य सम्पन्न कर ली जाय।
4. **रोपाई की विधि तथा प्रति इकाई पौधों की संख्या सुनिश्चित करें :** क्षारीय भूमि बहुत कड़ी होती है। रोपाई के समय यदि भूमि कड़ी है तो खेत में पानी भरकर देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई करके बगैर पाटा लगाये रोपाई करना चाहिए। ऐसा करने से रोपाई करते समय अंगुलियां आसानी से भूमि में धंस जाती हैं अन्यथा कठिनाई होती है। रोपाई  $15 \times 10$  से.मी. पर करें और एक स्थान पर 3, 4 पौध लगायें। रोपाई लाइनों में न करने की दशा में यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रति वर्ग मीटर 55-60 हिल हों। रोपाई हेतु 30 से 35 दिन की परिपक्व पौध उपयुक्त रहती है।
5. **समय से गैप फिलिंग करें :** रोपाई के बाद खेत में जहां क्षारीयता और लवणता की बाहुल्यता के कारण अथवा अन्य कारणों से पौधे मर जायें तो उसकी जगह उसी आयु के पौधों से गैप फिलिंग कर देना चाहिए। इसके लिए रोपाई के बाद शेष बची कुछ पौध को उसी खेत के किनारे गाढ़ देना चाहिए जिससे उसका प्रयोग बाद में गैप फिलिंग में किया जा सके।
6. **उर्वरकों का संतुलित तथा पौधों की वांछित अवस्था में प्रयोग :** ऊसरीले क्षेत्र में नत्रजन की मात्रा को सामान्य से 15 से 25 प्रतिशत बढ़ा लेना चाहिए और उसका प्रयोग पौधे की वांछित अवस्था में करना चाहिए। पोटाश उर्वरक का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर रोपाई के पूर्व खेत में करना चाहिए। ऊसरीली भूमि में सुधार के पहले 2-3 वर्षों में फास्फोरिक उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती किन्तु यदि मृदा परीक्षण के परिणाम से यह पता चले कि भूमि में इस तत्व की कमी है तो उसका भी प्रयोग करना चाहिए।
7. **जिंक का प्रयोग तथा खैरा रोग की रोकथाम करें :** ऊसरीली भूमि में जिंक की कमी होती है जिसके कारण धान में खैरा रोग लग जाता है तथा उपज में भारी कमी हो जाती है। अतः नयी तोड़ी गयी ऊसरीली भूमि में रोपाई के समय 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से अनिवार्य रूप से प्रयोग करना चाहिए।
- कभी-कभी 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रयोग करने के बाद भी खैरा रोग खेत में लग जाता है, इसकी रोकथाम के लिए 5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट तथा 20 कि.ग्रा. यूरिया 1000 लीटर पानी में घोलकर 10-15 दिनों के अन्तराल पर 2-3 पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।
8. **समय से काई की रोकथाम करें :** नयी तोड़ी गयी ऊसरीली भूमि में विशेषतया रेशेदार हरी नीली काई की विशेष समस्या रहती है जो एक मोटे परत के रूप में खेत में फैलकर पौधों को ढंक लेती है, जिससे पौधों की बाढ़ रुक जाती है और वह पीले पड़ने लगते हैं। इस हरी नीली काई को हाथ द्वारा पानी से छानकर बाहर निकाल लेना चाहिए अथवा काई पर 0.2-0.3 प्रतिशत कापर सल्फेट के घोल का छिड़काव खुले मौसम में जब धूप निकली हो, तो करना चाहिए। ऐसा करने से काई दो तीन दिन में समाप्त हो जाती है किन्तु कुछ समय बाद पुनः उग जाती है। अतः खेत में काई दिखाई देने पर पुनः कापर सल्फेट से उपचारित करना चाहिए। यदि छिड़काव की मशीन न हो तो खेत में तूतिया (कापर सल्फेट) की आवश्यक मात्रा को पानी में घोलकर मिला देना चाहिए।
9. **ऊसरीली पैच को पुनः उपचारित करें :** ऊसरीली भूमि में रोपाई और गैप फिलिंग के बाद भी बहुधा जहां ऊसरीलापन अधिक होता है, और पौधे मर जाते हैं ऊसरीली पैच दिखाई देने लगते हैं, ऐसे पैच या टुकड़ों को चारों ओर मेड़ बनाकर चिह्नित कर लेना चाहिए, फिर उसमें 4 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति वर्ग मीटर की दर से मिट्टी की ऊपरी 10 से.मी. की सतह में

मिला देना चाहिए। इसे बाद इस पैच में 25-30 से.मी. मोटी धान की पुआल की तह बिछा देना चाहिए। यदि कच्चा गोबर उपलब्ध हो तो उसे भी डालकर पानी भरकर 2-3 माह तक सड़ाना चाहिए। इसके बाद मार्च में पूरे खेत में ढैंचा बोकर हरी खाद बनाना चाहिए। ऐसा करने से पैच का ऊसरीलापन कम होने लगता है।

**10. सिंचाई तथा जल निकास की उचित व्यवस्था करें :** खेत में पानी को बहुत दिनों तक खड़ा नहीं रहने देना चाहिए अन्यथा पानी गरम होने पर उनमें बुलबुले उठने लगते हैं। खेत से लवणायुक्त पानी को जल निकासी नाली द्वारा बराबर निकालते रहना चाहिए और उसके स्थान पर पुनः अच्छा पानी भरते रहना चाहिए बहुधा ऊसरीले क्षेत्र में पानी के रहने के बावजूद धान के पौधे भूरे बादामी पड़कर सूखने लगते हैं और ऐसा मालूम होता है कि पानी की कमी के कारण सूख रहे हैं। किन्तु ऐसी भूमि में जड़ों के पास लवणता की बाहुल्यता के कारण पौधे पीले पड़कर सूखने लगते हैं। ऐसी स्थिति में खेत में लवणायुक्त पानी को निकालकर तुरन्त ताजा पानी भर देना चाहिए और 3-4 दिन बाद उस पानी को निकालकर पुनः ताजा पानी भर देना चाहिए। ऐसा करने से भूमि में मौजूद लवण खेत से बाहर चले जायेंगे और खेत धीरे-धीरे सुधर जायेंगे।

**11. दीमक तथा अन्य कीट/रोग की रोकथाम करें :** बहुधा ऊसरीले क्षेत्र में खेत के सूखा रहने पर दीमक का प्रकोप हो जाता है अतः उसकी रोकथाम के लिए बुवाई के पूर्व 2.5 लीटर क्लोरोपायरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. प्रति हेक्टर मिट्टी में मिलाना चाहिए। बुवाई के बाद यदि दीमक दिखाई दें तो क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. 2.5 - 3.0 लीटर प्रति हेक्टर की दर से सिंचाई के पानी में मिलाकर देना चाहिए। अन्य कीट व्याधि से पौधों से पौधों की सुरक्षा का कार्य सामान्य फसल की भाँति करना चाहिए।

**12. समय से कटाई-मङ्गाई करें :** ऊसरीले क्षेत्र में यह बात ध्यान देने योग्य है कि धान की कटाई भूमि की तरह से 15-20 से.मी. ऊपर की जाय जिससे धान के टूंठों के गलने के फलस्वरूप भूमि को अधिक मात्रा में जीवांश उपलब्ध हो जाय। फसल के कटने के पश्चात् बिना जुताई किये हुए तुरन्त खेत का पलेवा कर देना चाहिए। धान के टूंठों को सड़ाने के लिए 20 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टर का प्रयोग उचित नहीं पर करना चाहिए। ओट आने पर खेत की जुताई डिस्क हैरो से करके रबी के लिए खेत तैयार कर लेना चाहिए।

**13. ऊसरीली भूमि में बाजरे की खेती :** ऊसरीले क्षेत्र में खरीफ में धान के बाद दूसरी फसल बाजरे की है, जो लवणीयता और क्षारीयता के प्रति मध्यम सहिष्णु है और भूमि के 5.8 विद्युत चालकता (ई.सी.) तक तथा 8.5 से 9.0 अम्ल अनुपात (पी.एच) तक ली जा सकती है। ऊसरीले क्षेत्र के लिए बी.जे.-104, बी.जे.-560, पी.एच.बी.-10 पी.एच.बी.-12 उपयुक्त पायी गयी हैं। भूमि के अधिक लवणीय होने की दशा में इसकी बुवाई मेड़ों की ढाल के मध्य करना उचित होगा। ये मेड़े मैकार्मिक कल्टीवेटर में रिज और खाद व बीज के लिए दो चोंगे लगाकर बुवाई की जा सकती है। अन्य शस्य क्रियाएँ सामान्य फसल की भाँति अपनानी चाहिए।

**14. ऊसरीली भूमि में ग्वार की खेती :** मध्य लवणीय भूमि में 2-3 वर्षा हो जाने के बाद जुलाई के मध्य में ग्वार की फसल भी ली जा सकती है। यह फसल भी मध्यम सहिष्णु है।

**15. ढैंचे की हरी खाद का प्रयोग किया जाना आवश्यक है।**



# एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन (आई.पी.एन.एम.)

प्रत्येक किसान यह अपेक्षा करता है कि उसकी जोत के सम्पूर्ण क्षेत्र में अच्छी गुणवत्ता वाली अधिक से अधिक उपज प्राप्त हो। प्रारम्भ में जब रासायनिक उर्वरक उपलब्ध नहीं थे खेती में जैविक खादों का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता था जिससे कृषि उत्पादन अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुंच पाता था परन्तु 60 के दशक में जब हरित क्रांति का उद्भव हुआ, उर्वरकों का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ता गया जिससे उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई। प्रारम्भ में प्रमुख पोषक तत्वों में केवल नत्रजनिक उर्वरकों का प्रयोग हुआ लेकिन धीरे-धीरे फॉस्फेटिक एवं पोटेशिक उर्वरकों के महत्व को समझते हुए इनका प्रयोग भी होने लगा परन्तु अन्य आवश्यक पोषक तत्वों यथा मैग्नीशियम, सल्फर, जिंक, आयरन, कापर मैग्नीज, मालिब्डेनम तथा बोरान एवं क्लोरीन की मिट्टी में कमी होती रही, फलस्वरूप इन तत्वों की पौधों को आवश्यकतानुसार उपलब्धता न होने से अधिकांश क्षेत्रों में उत्पादन में ठहराव आ गया तथा उत्पादन में कमी भी देखी गयी। मृदा के जीवांश में हो रहे लगातार छास से मृदा में भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं में इस प्रकार परिवर्तन हुआ कि देश की बढ़ती आबादी के सापेक्ष खाद्यान्नोंत्पादन पर प्रश्न चिन्ह लग गया। गोबर की खाद/हरी खाद या गेहू के भूसे द्वारा कुल पोषक तत्वों के 50 से 75 प्रतिशत आपूर्ति से फसल प्रणाली की उपज में वृद्धि होती है तथा उर्वरता बनी रहती है।

**तत्व प्रबन्धन का मूल सिद्धान्त :** मृदा उर्वरता का संतुलन इस प्रकार किया जाय कि फसल की मांग एवं आवश्यकता के अनुसार पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध होते रहें, जिससे अधिक से अधिक (वांछित) उपज मिल सके और मृदा स्वरूप सुरक्षित बना रहे। इसके लिए आवश्यकतानुसार अकार्बनिक एवं कार्बनिक स्रोतों से फसल को सभी तत्वों का निश्चित अनुपात में ग्रहण करना आवश्यक है। क्योंकि प्रत्येक तत्व का पौधों के अन्दर अलग-अलग कार्य एवं महत्व है जो विभिन्न अवस्थाओं में पूर्ण होता है। कोई एक तत्व दूसरे तत्व का पूरक नहीं है। यह संतुलन बिगड़ने पर उत्पादन सीधे प्रभावित होता है। इस व्यवस्था/तकनीकी को एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन की संज्ञा दी गई है।

## एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन के घटक :

1. जैविक खाद/उर्वरक
2. फसल अवशेष
3. जीवाणु खाद
4. रसायनिक खाद

## कृषि में एकीकृत तत्व प्रबन्धन से लाभ :

1. अधिकतम पैदावार प्राप्त करना।
2. पोषक तत्वों को बर्बादी से बचाना।
3. विषेलापन तथा प्रतिक्रियाओं से बचाना, किसी एक तत्व की अधिकता भी विषेलापन पैदा करती है।
4. मृदा की उत्पादकता एवं स्वास्थ्य बनाये रखना।
5. गुणात्मक उत्पादन।
6. वातावरण की विपरीत परिस्थितियों से बचाव।
7. कीड़े मकोड़ों के प्रभाव को प्राकृतिक तौर पर कम करना।
8. लाभ/लागत अनुपात में वृद्धि।

## एकीकृत पोषक तत्त्व प्रबन्धन हेतु कुछ सुझाव :

1. मिट्टी परीक्षण के आधार पर ही उर्वरकों एवं जैविक खादों का प्रयोग करें।
2. दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्वर का प्रयोग अवश्य करें।
3. धान व गेहूं के फसल चक्र में ढैंचे की हरी खाद का प्रयोग करें।
4. फसल चक्र में परिवर्तन करें।
5. आवश्यकतानुसार उपलब्धता के आधार पर गोबर तथा कूड़ा-करकट का प्रयोग कर कम्पोस्ट बनाई जाये।
6. खेत में फसलावशिष्ट जैविक पदार्थों को मिट्टी में मिला दिया जाय।
7. विभिन्न प्रकार के जैव उर्वरकों तथा नत्रजनिक संस्लेषी, फास्फेट को घुलनशील बनाने वाले बैक्टीरियल अलाल तथा फंगल बायोफर्टिलाइजर का प्रयोग करें।
8. कार्बनिक पदार्थ तथा अकार्बनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग करें।

## जैविक खादों एवं जैव उर्वरकों द्वारा उर्वरकों के समतुल्य पोषक तत्त्व :

सामग्री	निवेश की मात्रा	उर्वरकों के रूप में पोषक तत्वों की समतुल्य मात्रा
(क) जैविक खादें / फसल अवशेष		
गोबर की खाद	प्रति टन	3.6 कि.ग्रा 0 नाइट्रोजन फॉस्फोरस + पोटाश (2:1:1)
ढैंचा की हरी खाद	45 दिन की फसल	50-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (बोनी जाति के धान में)
गन्ने की खोई	5 टन प्रति हेटो	12 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति टन
धान का पुआल+जलकुम्भी	5 टन प्रति हेटो	20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति टन
(ख) जैव उर्वरक		
राइजोबियम कल्वर		19-22 कि.ग्रा. नाइट्रोजन
एजेटोबैक्टर एवं कल्वर		
एजोस्पिरिलम		20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन
नील हरित शैवाल	10 कि.ग्रा. प्रति हेटो	20-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन
एजोला	6-21 टन प्रति हेटो	3-5 कि.ग्रा. प्रति हेटो

## एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन (आई.पी.एम.)

प्रदेश में कृषि के प्रति वांछित आकर्षण पैदा करने एवं उसको कम खर्चीला और अधिक लाभकारी बनाने के लिए जिन उपायों पर गौर किया जा रहा है, उनमें प्रमाणित एवं उपचारित बीजों की उपलब्धि, उर्वरकों का सही ढंग से उपयोग, अच्छा जल प्रबन्ध एवं इंटीग्रेटेड पेरस्ट मैनेजमेंट मुख्य हैं। प्रदेश में हर वर्ष अनेक कीट, रोगों, चूहों एवं खरपतवारों से फसलों की उपज पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन समस्याओं में धान का बाल काटने वाला सैनिक कीट, धान का गन्धी कीट, चने एवं अरहर की फली बेधक, मूँगफली का सफेद गिडार, सरसों का माहूं आम का फुदका, आलू का पछेता झुलसा, मटर का बुकनी रोग, टमाटर एवं भिंडी का मौजेक, अरहर का बन्धा रोग और गेहूं का मामा आदि कुछ प्रमुख समस्याएँ हैं।

अभी तक इन समस्याओं से निपटने के लिए आमतौर पर केवल रसायनों का ही सहारा लिया जाता रहा है। यह रसायन खर्चीले होने के साथ-साथ वातावरण को दूषित करते हैं एवं कई प्रकार की दुर्घटनाओं का भय भी बना रहता है। इन रसायनों के अवशेष अक्सर फूलों एवं सब्जियों आदि में रह जाते हैं तथा उपभोक्ता के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव छोड़ सकते हैं। रसायनों के निरन्तर उपयोग से कई कीटों में उनके विरुद्ध अवरोध पैदा हुआ है और बहुत से कम महत्वपूर्ण कीट बड़ी समस्यायें बने हैं। साथ ही साथ खेत में या वातावरण में उपस्थित परजीवी कीट समाप्त हो जाते हैं और पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाता है। समस्याओं के प्रभावी निदान एवं उपर्युक्त खतरों से बचने के लिए अब जिस पद्धति पर जोर दिया जा रहा है उसको इंटीग्रेटेड पेरस्ट मैनेजमेंट या एकीकृत नाशीजीव प्रबन्ध कहा जाता है। इस पद्धति में कीटों रोगों और खरपतवारों आदि के उन्मूलन या नियन्त्रण के बजाय उनके प्रबन्ध की बात की जाती है। वास्तव में हमारा ध्येय किसी जीव को हमेशा के लिए नष्ट करना नहीं है बल्कि ऐसे उपाय करने से है जिससे उनकी संख्या / घनत्व सीमित रहे और उनसे आर्थिक क्षति न पहुंच सके। इस पद्धति की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :-

1. गर्मी में गहरी जुताई करके फसलों एवं खरपतवारों के अवशेष को नष्ट कर देना जिससे कीट/रोग के अवशेष उन्हीं के साथ नष्ट हो जायें और उनकी वृद्धि पर नियन्त्रण पाया जा सके।
2. समुचित फसल चक्र अपनाया जाना।
3. फसल के प्रतिरोधी प्रजातियों के मानक बीजों की बुवाई करना।
4. हमेशा बीज को शोधित करके बोना।
5. बुवाई समय से व एकसार की जाय, पौधों से पौधों की वांछित दूरी बनाये रखी जाये।
6. उर्वरकों का संतुलित उपयोग किया जाय।
7. समुचित जल प्रबन्ध अपनाया जाय।
8. निराई-गुड़ाई करके समय से खरपतवारों को नष्ट करते रहें।

9. सर्वेक्षण द्वारा नाशीजीव एवं उनके प्राकृतिक शत्रुओं पर बराबर निगाह रखी जाय और यदि नाशीजीव प्राकृतिक शत्रु से बराबर अधिक मात्रा में हों तभी रासायनिक उपचार अपनाया जाय।
10. नाशीजीव के अण्ड समूह एवं इल्लियों को प्रारम्भिक अवस्था में नष्ट करते रहें।
11. प्रकाश / फेरोमैन ट्रैप का उपयोग करके नाशीजीव के प्रौढ़ को नष्ट किया जाय।
12. नाशीजीव के प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या में वृद्धि करने के लिए उन्हें बाहर से लाकर खेतों में छोड़ा जाय।

इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेन्ट में पहली आवश्यकता यह है कि फसलों का बराबर सर्वेक्षण किया जाता रहे, ताकि किसानों एवं कार्यकर्ताओं को विभिन्न कीटों और रोगों आदि की स्थिति के बारे में ज्ञान होता रहे। यह भी आवश्यक है कि कार्यकर्ताओं और किसानों के प्रशिक्षण का उचित प्रबन्ध किया जाये, ताकि वह समस्याओं को पहचानने और उससे सम्बन्धित उस बिन्दु अथवा अवस्था को जानने की क्षमता ला सकें, जिन पर रसायनों का प्रयोग या दूसरे कार्य करने आवश्यक हो जाते हैं।

इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेन्ट में जैविक रसायनों का बहुत महत्व है जिसमें विभिन्न प्रकार के परजीवी / परभक्षी कीट, फफूंदी, बैकटीरिया, विषाणु और अन्य जीव जन्तु हैं, जिनके द्वारा फसलों के हानिकारक कीटों एवं रोगों आदि का निदान किया जाता है। सामान्य पर्यावरण में यह सारे जीव अपना कार्य करते रहते हैं और समस्याओं को काफी हद तक सीमा में रखते हैं परन्तु आज की सघन खेती में इनकी सामान्य कार्यशीलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिसमें रसायनों का अन्धाधुन्ध प्रयोग सबसे बड़ी बाधा है। प्रदेश में कई कीट एवं अन्य समस्याओं का प्रभारी जैविक नियन्त्रण किया गया है जिसमें गन्ने का पाइरिला कीट, चने का फली बेधक एवं जलकुम्भी का नियन्त्रण किया गया है जिसमें गन्ने का पाइरिला कीट, चने का फली बेधक एवं जलकुम्भी का सफल नियन्त्रण कुछ विशेष उदाहरण हैं। चने के फली बेधक के लिए न्यूकिल्यर पाली हेड्रोसिस वाइरस (एन.पी.वी.) 250 शिशु समतुल्य (एल.ई.) की दर से बहुत सफल पाया गया है। जलकुम्भी जो प्रदेश के जलाशयों की बड़ी समस्या है, दो प्रजातियों के कीटों (वीविल) द्वारा प्रभावी ढंग से नियन्त्रण में आ सकती है। जैविक नियन्त्रण को बढ़ाने के लिए ऐसी प्रयोगशालाओं की स्थापना की आवश्यकता है, जहां पर जीवियां आदि को पालकर बढ़ाया जा सके और उनका सफल परीक्षण किया जा सके। डायपेल-8 एल नामक विषाणु युक्त जैविक रसायन का उपयोग लैपीडाप्टेरस कीट के नियन्त्रण के लिये किया जा रहा है।

अनेक प्रमुख फसलों के मुख्य कीट समस्याओं का उप संख्या / धनत्व का ज्ञान प्राप्त हो चुका है, जिन पर रसायनों का प्रयोग किया जाता है, इसमें धान के सभी कीट, सरसों का माहूं और कपास के कीट शामिल हैं। अन्य कीटों और रोगों के लिए इस प्रकार के अध्ययन की आवश्यकता है, ताकि उनके बारे में भी इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो सके। प्रदेश के विश्वविद्यालयों एवं अन्य संस्थानों में इन विषयों पर शोध कार्य चल रहा है जैसे-जैसे ज्ञान मिलता जायेगा, वैसे-वैसे इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेन्ट की पद्धति को प्रभावी ढंग से अपनाने में सफलता मिलेगी। इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेन्ट की पद्धति को अपनाने से कृषि रक्षा रसायनों पर खर्च कम आयेगा, किसान को राहत मिलेगी और पर्यावरण सुरक्षित रहेगा।

## कार्यक्रम का मार्शिक कैलेंडर

खरीफ की फसलों में अपनाये जा रहे आई0पी0एम0 प्रदर्शनों का माहवार कार्यक्रम (फसल प्लान)

क्रमांक	फसल / माह	अप्रैल / मई	जून	जुलाई	आगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर
1.	चावल	बेन्यमार्क सर्वे एवं कृषकों के साथ बैठक, गर्मी की जुलाई	1 नसरी 2 खेत की तैयारी 3 कृषकों / स्थान का कोरे ट्रेनिंग टीम चयन	खेत की तैयारी रोपाई / बोवाई ट्रेनिंग टीम का चयन	प्रदर्शन क्रियान्वयन क्रमशः क्रमशः	फील्ड स्कूल क्रियान्वयन फील्ड स्कूल सप्ताह तथा कृषक दिवस प्रथम फील्ड, स्कूल का प्रारम्भ	फील्ड स्कूल के नवे / दसरे सप्ताह तथा कृषक दिवस का आयोजन क्राप कटिंग	प्रसार कार्यकर्ताओं की जनपद स्तरीय कार्यशाला का आयोजन व मूल्यांकन
2.	कपास	खेत की तैयारी, बोवाई तथा चयन, प्रदर्शन स्थल व कृषकों का चयन	कोरे ट्रेनिंग टीम का गठन प्रथम व द्वितीय सत्र का प्रशिक्षण	तीसरे तथा चौथे पंचम, पाष्ठम सप्तम, अष्टम सत्र का प्रशिक्षण प्रशिक्षण	सप्तम, दसम सत्र का प्रशिक्षण	उत्पादन के आंकड़ों के आधार पर सत्र का प्रशिक्षण	उत्पादन के आंकड़ों के आधार पर सत्र का प्रशिक्षण	
3.	मुँगफली	बेच मार्फ रट्टे एवं कृषकों के साथ बैठक, गर्मी की जुलाई	खेत की तैयारी प्रदर्शन स्थल व कृषकों का चयन, बुवाई	कोरे ट्रेनिंग टीम का गठन, बुवाई (प्रथम सप्ताह 10/20 व 30 तक के बीच) तरीख	3.45 सत्र (प्रथम सप्ताह 10/20 व 30 तक के बीच) प्रथम सत्र का आम्रम्,	6.7.8 सत्र तरीख तरीख	9 व 10वे सत्र का प्रशिक्षण का प्रशिक्षण तरीख दिवस 10 व 20 तरीख	मूल्यांकन सत्र का प्रशिक्षण कृषक दिवस 10 व 20 तरीख वीसर्वी, तीसर्वी तरीख

क्रमांक	फसल / माह	अप्रैल / मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर
4.	मोयारीन	तदेव	खेत की तैयारी व बुवाई प्रदर्शन स्थल एवं कृषकों का चयन	खेत की तैयारी बुवाई क्रमशः कोर ट्रैनिंग ईम का गठन	प्रशिक्षण सत्र आरम्भ करना 2,3,4	प्रशिक्षण सत्र प्रशिक्षण सत्र का आयोजन	प्रशिक्षण सत्र 8,9,10 तथा कृषक दिवस	क्राप कर्टेंग व मूल्यांकन
5.	अरहर (ओरी-अल्कालिन)	तदेव	खेत की तैयारी व बुवाई स्थल व कृषकों का चयन	खेत की तैयारी गठन तथा दो प्रशिक्षण सत्र (10वीं तथा 25वीं तारीख)	कोर ईम का गठन तथा दो प्रशिक्षण सत्र (10वीं तथा 25वीं तारीख)	प्रशिक्षण सत्र 3 व 4	प्रशिक्षण सत्र 5 व 6	प्रशिक्षण सत्र 7 व 8
6.	(फैक्ट्री-वीर्धकालीन)	तदेव	-	खेत की तैयारी एवं बुवाई स्थल एवं कृषकों का चयन	कोर ईम का गठन प्रथम सत्र 25 तारीख (अन्तिम सप्ताह)	सत्र दो माह की (माह की 5 तारीख)	सत्र 3 व 4 माह की (माह की 5 तारीख)	सत्र 5 (माह की 15 तारीख)
				खेत की तैयारी एवं बुवाई स्थल एवं कृषकों का चयन	सत्र दो माह की (माह की 5 तारीख)	सत्र 3 व 4 माह की (माह की 5 तारीख)	सत्र 5 (माह की 15 तारीख)	मार्च / अप्रैल किसान दिवस मूल्यांकन
				दिसम्बर	जनवरी	फरवरी		
				6 व 7 माह की	सत्र 8वां माह	सत्र 9 व 10		
				5 व 15 तारीख	की 15 तारीख	माह की 25		
							तारीख	

## आई०पी०एम० के सन्दर्भ में विभिन्न फसलों में कीटनाशी पदार्थों के प्रयोग के बिन्दु

क्रमांक	फसल	फसल कीट की अवस्था	कीट / रोग	उपचार	
1	चावल	1 बुवाई	बीज शोधन	एट्रेप्टोसाइक्लीन रसायन के घोल में रातभर करना	
		2 नसरी में	खरपतवार	शस्य कियाओं द्वारा नियंत्रण	
		3 रोपाई के समय	-	पौधों की चोटी का काटा जाना।	
		4 रोपाई के बाद	खरपतवार	ब्यूटाकलोर का प्रयोग करना।	
		5 बढ़वार की अवस्था	हिम्मा, पत्ती लपेटक,	रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग वर्जिट।	
		6 दुग्धावस्था	हरा फुटका	गालमीज तथा हरे फुटकों के प्रारम्भिक प्रकोप के निर्धारण हेतु 400 से 500 मिली. प्रति हे. एजाडिरेविटन 0.03 प्रतिशत (नीम पदार्थ) का छिड़काव पत्ती लपेटक तथा तना छेदक, सेपीडियाट्रस कुल के कीड़ों के लिए वी.टी का उपयोग।	
		7 दाना अवस्था	गर्धी कीट	गंधी निवारण हेतु लहसुन तथा तम्भाकू के घोल का उपयोग।	
			सैनिक कीट	यांत्रिक विधियां तथा पानी भरना। तीव्र प्रकोप स्तर पर रासायनिक उपचार	
2	कपास	1 बुवाई	बीज जनित्र रोग	गंधक के तेजाब से बीज को रेशाहीन करना। स्टेप्टोसाइक्लीन तथा कार्बन्ड्जिम से बीज का शोधन।	
		2 प्रारम्भिक बढ़वार अवस्था	जैसिड तथा महू	एजाडिरेविटन 0.03 प्रतिशत (नीम पदार्थ) का 400-500 मिली. प्रति हे.	
		(4 से 6 सप्ताह की फसल)	छिड़काव 10-15 दिन के अन्तराल पर करें।		
		3 मध्य बढ़वार अवस्था	पत्ती लपेटक तथा	एजाडिरेविटन 0.03 प्रतिशत (नीम पदार्थ) 500-700 मिली. प्रति हे.	
		(6 सप्ताह से आगे)	विभिन्न गूलर वेदक	छिड़काव, लगभग 10-10 दिन के अन्तराल पर।	
			कीट	वेसिलस थ्रूरिजिएन्सि (वी.टी.) का 750-1000 मिली./ ग्राम का प्रति हे.	
				का छिड़काव।	
टिप्पणी : 1 फसल की बढ़वार की अवस्था में कीटनाशक का उपयोग वर्जिट कर देने से भिन्न कीट एवं मकड़ियां आदि की संरचना सुरक्षित रहकर बढ़ेगी एवं भावी नाशी जीवों को नियंत्रण में रखेगी।					
2 नीम पदार्थ एवं वी.टी. का पूरा लाभ कीटों की प्रारम्भिक अवस्था में पैषें के बड़ने वाले अंगों पर भली प्रकार से छिड़काव करने पर ही मिलेगा।					
3 कीटनाशकों जैसे लैन्सा साइडेलोप्रिन, डाइमेथोएट, डाईवलोरोवास आदि का प्रयोग नाशी कीटों के आर्थिक प्रकोप स्तर को कार्य करने तथा मित्र कीटों के भाव की दशा में ही किया जाना चाहिए।					

3.	मूँगफली	1 बुवाई	बीज जनित्र रोग सफेद गिडार	समय से बुवाई , थिरम तथा कार्बनडाजिम के मिश्न से बीज शोधन। वलोरकाइरिफास/व्यूनालफास से बीज उपचार
4.	सोयाबीन	बुताई	माहू तथा फुदके बीज जनित्र रोग गर्डिल बीटिंग	एजाडिरेक्टन 0.03 प्रतिशत (नीम पदार्थ का प्रयोग) थीरम द्वारा बीज शोधन , फोरेक / कारबोप्यूरान का मिट्टी में मिलाया जाना
5.	अरहर	1 बुवाई	बीज जनित्र रोग उकड़ा पत्ती पलेटक / फली छेदक / की अवश्या	(सुखात्सक) थीरम द्वारा बीज शोधन ट्राइकोडर्मा फृण्डीनशक पदार्थ से बीज शोधन हेलियोसिस फली छेदक के लिए एन.पी.वी. का प्रयोग। एजाडिरेक्टन 0.03 प्रतिशत नीम पदार्थ का प्रयोग। पाड बोरर
		2 बढ़वार / फली बनने की अवश्या		

नोट : बायो एजेन्ट्स (ट्राइकोडर्मा, ट्राइकोभामा एवं एन.पी.वी.) का उत्पादन कृषि विश्वविद्यालय एवं कृषि विभाग के अन्तर्गत स्थापित बायोलैब में हो रहा है।  
सम्बिचित बायो लेब से संलग्न सूची के अनुसार आवंति जननपद आवश्यकतानुसार बायोएजेन्ट्स प्राप्त कर सकते हैं।

## वर्तमान समय में प्रदेश में कृषि विभाग द्वारा संचालित निम्न आई. पी. एम. प्रयोगशालाएं

क्रमांक	जैविक नियंत्रण प्रयोगशाला	प्रभासी जैविक नियंत्रण प्रयोगशाला	मंडल
1	आई.पी.एम. प्रयोगशाला, बरेली	उप कृषि निदेशक कृषि रक्षा बरेली, मंडल बरेली	बरेली मंडल
2	आई.पी.एम. प्रयोगशाला, मुरादाबाद	उप कृषि निदेशक कृषि रक्षा मुरादाबाद, मंडल मुरादाबाद	मुरादाबाद मंडल
3	आई.पी.एम. प्रयोगशाला, वाराणसी	उप कृषि निदेशक कृषि रक्षा वाराणसी, मंडल वाराणसी	वाराणसी विध्याचाल फैजाबाद एवं देवी पाटन मंडल
4	आई.पी.एम. प्रयोगशाला, नैनी, इलाहाबाद	उप कृषि निदेशक कृषि रक्षा इलाहाबाद, मंडल इलाहाबाद	इलाहाबाद एवं कानपुर मंडल
5	आई.पी.एम. प्रयोगशाला, आजमगढ़	उप कृषि निदेशक कृषि रक्षा आजमगढ़, मंडल आजमगढ़	आजमगढ़, गोरखपुर एवं बस्ती मंडल
6	आई.पी.एम. प्रयोगशाला, हरदोई	जिला कृषि रक्षा अधिकारी, हरदोई	लखनऊ मंडल
7	आई.पी.एम. प्रयोगशाला, मथुरा	जिला कृषि रक्षा अधिकारी, मथुरा	आगरा मंडल
8	आई.पी.एम. प्रयोगशाला, उरई (जालौन)	जिला कृषि रक्षा अधिकारी जालौन	झांसी एवं चित्रकूट धाम मंडल
9	आई.पी.एम. प्रयोगशाला, कैरना (मुजफ्फर नगर)	जिला कृषि रक्षा अधिकारी मुजफ्फर नगर	सहारनपुर एवं मेरठ मंडल

# जैविक खेती को अपनाना आवश्यक क्यों?

डॉ. सतेन्द्र कुमार, डॉ. प्रेम नाथ

मृदा विज्ञान विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं औद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ

सम्पूर्ण विश्व में बढ़ती हुई जनसंख्या एक गम्भीर समस्या है, बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ भोजन की आपूर्ति के लिए मानव द्वारा खाद्य उत्पादन की होड़ में अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए तरह—तरह की रासायनिक खादों, जहरीले कीटनाशकों का उपयोग, प्रकृति के जैविक पर अजैविक पदार्थों के बीच आदान—प्रदान के चक्र को (इकोलॉजी सिस्टम) प्रभावित करता है, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति खराब हो जाती है, साथ ही वातावरण प्रदूषित होता है तथा मनुष्य के स्वास्थ्य में गिरावट आती है।



प्राचीन काल में मानव स्वास्थ्य के अनुकूल तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुरूप खेती की जाती थी, जिससे जैविक और अजैविक पदार्थों के बीच आदान—प्रदान का चक्र निरन्तर चलता रहा था, जिसके फलस्वरूप, जल, भूमि, वायु तथा वातावरण प्रदूषित नहीं होता था। हमारे देश में जैविक खेती का इतिहास लगभग 5000 साल से भी अधिक पुराना है। यह सजीव जैविक खेती ही थी जिससे इतने लम्बे समय तक अनवरत अन्न उत्पादन के साथ मिट्ठी की उर्वरा शक्ति को बनाये रखा जिससे खाद्य सुरक्षा एवं पोषणीय सुरक्षा संभव हो सकती है। अब हम रासायनिक खादों, जहरीले कीटनाशकों के उपयोग के स्थान पर, जैविक खादों एवं दवाईयों का उपयोग कर, अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं जिससे भूमि, जल एवं वातावरण शुद्ध रहेग और मनुष्य एवं प्रत्येक जीवधारी स्वस्थ रहेगा।

हरित क्रांति के समय से बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए एवं आय की दृष्टि से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है। अधिक उत्पादन के लिये खेती में अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक का उपयोग करना पड़ता है जिससे सामान्य व छोटे कृषक के पास कम जोत में अत्यधिक लागत लग रही है और जल, भूमि, वायु और वातावरण भी प्रदूषित हो रहा है साथ ही खाद्य पदार्थ भी जहरीले हो रहे हैं। इसलिए इस प्रकार की उपरोक्त सभी समस्याओं से निपटने के लिये गत वर्षों से निरन्तर टिकाऊ खेती के सिद्धान्त पर खेती करने की सिफारिश की गई, जिसे प्रदेश के कृषि विभाग ने इस विशेष प्रकार की खेती को अपनाने के लिए बढ़ावा दिया जिसे हम जैविक खेती के नाम से जानते हैं। भारत सरकार भी इस खेती को अपनाने के लिए प्रचार—प्रसार कर रही है।

जैविक खेती, की विधि रासायनिक खेती की विधि की तुलना में बराबर या अधिक उत्पादन देती है अर्थात् जैविक खेती मृदा की उर्वरता एवं कृषकों की उत्पादकता बढ़ाने में पूर्णतः सहायक है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जैविक खेती की विधि और भी अधिक लाभदायक है। जैविक विधि द्वारा खेती करने से उत्पादन की लागत तो कम होती ही है इसके साथ ही कृषक भाइयों को आय अधिक प्राप्त होती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद अधिक खरे उत्तरते हैं। जिसके फलस्वरूप सामान्य उत्पादन की अपेक्षा में कृषक भाई अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। आधुनिक समय में निरन्तर, बढ़ती हुई जनसंख्या, पर्यावरण प्रदूषण, भूमि की उर्वरा शक्ति का संरक्षण एवं मानव स्वास्थ्य के लिए जैविक खेती की राह अत्यन्त लाभदायक है। मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए नितान्त आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधन प्रदूषित न हो, शुद्ध वातावरण रहे एवं पौष्टिक आहार मिलता रहे, इसके लिये हमें जैविक खेती को कृषि पद्धतियाँ को अपनाना होगा।

जोकि हमारे नैसर्गिक संसाधनों एवं मानवीय पर्यावरण को प्रदूषित किये बगैर समस्त जनमानस को खाद्य सामग्री उपलब्ध करा सकेगी तथा हमें खुशहाल जीने की राह दिखा सकेगी।

### जैविक खेती से होने वाले लाभ :

#### कृषकों की दृष्टि से लाभ :

- ◆ भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि हो जाती है।
- ◆ सिंचाई अन्तराल में वृद्धि होती है।
- ◆ रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से लागत में कमी आती है।
- ◆ फसलों की उत्पादकता में वृद्धि।

#### मिट्टी की दृष्टि से :

- ◆ जैविक खाद के उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है।
- ◆ भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है।
- ◆ भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होगा।

#### पर्यावरण को दृष्टि से :

- ◆ भूमि के जल स्तर में वृद्धि होती है।
- ◆ मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है।
- ◆ कचरे का उपयोग, खाद बनाने में, होने से बीमारियों में कमी आती है।
- ◆ फसल उत्पादन की लागत में कमी एवं आय में वृद्धि।
- ◆ अंतर्राष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद की गुणवत्ता का खरा उत्तरना।

### जैविक खादों के गुण :

**कम लागत :** जैविक खादें व जैविक कीट तथा खर-पतवार नियंत्रक रासायनिक उर्वरकों आदि की तुलना में कम खर्च (लगभग 75 से 85 प्रतिशत) में तैयार कर सकते हैं।

**स्थानीय उपलब्धता :** जैविक कृषि उत्पादों की उपलब्धता ग्राम स्तर पर ही हो सकती है, स्थानीय संसाधनों के विवेकपूर्ण प्रयोग से जैविक खादें आसानी से तैयार की जा सकती हैं।

**सुग्राह्यता :** विषहीन, प्रदूषणमूलक, प्राकृतिक संसाधनों से तैयार की गयी जैविक खादें आसानी से अपनायी जा सकती हैं, जैविक खाद पर्यावरण मित्रवत होती है।

**उत्पादकता :** जैविक खादों से उत्पादित पदार्थों की गुणवत्ता, पौष्टिकता एवं प्रति उनित उत्पादन क्षमता में निरन्तर वृद्धि होती है।

**पोषणीयता :** जैविक खादों के संतुलित प्रयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक व जैविक संरचना में गुणोत्तर वृद्धि होती है जैविक उत्पाद अधिक स्वास्थ्य वर्धक होते हैं।

**विविधीकरण :** जैविक तकनीक व स्थानीय कृषि तकनीक से समन्वित कृषि का विकास होता है। जैविक खेती और जैव विभिन्नता व विविधीकरण के संतुलित विकास में सहायक होती है।

**किसान एवं किसानी मित्रवत :** कम लागत, स्थानीय निर्माण व उपयोगिता के विभिन्न गुण जैविक खादों को किसान के लिए मित्रवत बनाते हैं। जैविक खाद से मृदा में जलधारण क्षमता, पीएच मान, जीवाशम का अनुपात आदि में वृद्धि होती है।

**आय में वृद्धि – गाँव की समृद्धि :** जैविक खेती में कम लागत व गुणोत्तर उत्पादन से सकल आय में बढ़ोत्तरी होती है।

**निर्यात में प्रोत्साहन :** जैविक कृषि उत्पादों की विक्री व निर्यात में प्रोत्साहन तो मिलता ही है, कृषि उत्पादों पर बाजार में 30–40 प्रतिशत अधिक मूल्य भी मिलता है।

**खरपतवार एवं कीट प्रबंधन :** जैविक खादों के नित्य प्रयोग से रासायनिक विधा की खेती—बाड़ी की तुलना में खरपतवार व कीड़ों के प्रकोप में कमी आती है। फलतः रासायनिक खरपतवार व कीटनाशी पर खर्च तथा उनके विभिन्न हानिकारक आयाम जैसे मित्र कीटों में कमी, प्रदुषण, खाद्य श्रृंखला में विष प्रकोप आदि से बचा जा सकता है।

**भण्डारण क्षमता :** जैविक खादों के प्रयोग से उत्पादित कृषि उत्पादनों में भण्डारण क्षमता तुलनात्मक रूप से लगभग 30–40 प्रतिशत अधिक होती है।



### पोषक तत्व प्रबंधन की देषज तकनीक :

जैविक खेती से फसलों एवं पौधों को समुचित मात्रा में पोषक तत्वों की उपलब्धता के लिए विभिन्न प्रकार की देषज तकनीकों का उपयोग किया जाता है। सामान्य रूप से इन तकनीकों का उपयोग प्राचीनकाल से पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए किया जाता रहा है। देषज तकनीक के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थों, पौधों के अवशेषों, जन्तु अवशेषों, हरी खाद एवं केचुए की खादों का प्रयोग किया जाता है।

1. गोबर की खाद का उपयोग भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए एफ.वाई.एम. का प्रयोग सदियों से किया जा रहा है। गोबर की खाद एक परम्परागत कार्बनिक खाद है एवं यह कृषकों को आसानी से प्राप्त हो जाती है। प्रक्षेत्र एफ.वाई.एम. पशुओं का ठोस एवं द्रव के साथ—साथ उनके बिछावन, आहार, अवशेष आदि का मिश्रण होता है।
2. हरी खाद का उपयोग, हरी खाद एक बहुत ही पुरानी एवं प्रभावकारी पोषक प्रबंधन तकनीक है। यह सस्ती एवं स्थानीय रूप से उपलब्ध मृदा उर्वरता को बनाने एवं पोषक तत्वों विशेषकर नाइट्रोजन की आपूर्ति करने का स्रोत है। हरी खाद के लिए हरी खाद फसलों को खेत में लगाया जा सकता है।
3. दलहनी फसलों को लगाना, दलहनी फसलें उनकी वायुमण्डल से नाइट्रोजन रिथरीकरण की क्षमता के कारण ये मृदा में उर्वरता को भण्डारित करने का कार्य करती है। परम्परागत कृषि में जबकि रासायनिक उर्वरकों का उपयोग नहीं किया जाता था तब दलहनी फसलें ही मृदा की उर्वरा बनाए रखने में अहम योगदान देती थीं।
4. फसल अवशेष का उपयोग, सामान्यतया धान, गेहूँ व अन्य फसल की कटाई के पश्चात बहुत सा फसल अवशेष जो पौधों को पोषक तत्वों की आपूर्ति के साथ—साथ मृदा की दशा को भी सुधारने में सहायक होता है। यह तकनीक कृषकों द्वारा आदि काल से अपनाई जा रही है।
5. केचुआ खाद का उपयोग, केचुआ खाद का उपयोग बहुत प्राचीनकाल से होता आ रहा है। जैविक खेती में पोषक तत्व प्रबन्धन हेतु यह सभी तकनीकी से उत्तम साबित हुई है। केचुआ खाद का उत्पादन केचुओं के द्वारा किया जाता है। प्राचीन कृषि में खेतों में विभिन्न प्रकार के जैव अवशेष केचुओं के लिए क्रियाशीलता में वृद्धि होकर प्राकृतिक केचुआ खाद खेतों को मिलती थी।

6. खलियों का उपयोत्रा, जैविक कृषि में पोषक तत्व प्रबंधन हेतु देषज तरीके से खाद एवं अखाद दोनों प्रकार की खलियों का उपयोग किया जा सकता है। खलियों में प्रचुर मात्रा में कार्बन के साथ—साथ नाइट्रोजन एवं पोटाश पाया जाता है। नाइट्रोजन की मात्रा 2.5 प्रतिशत, महुआ खली में 7.9 प्रतिशत करड़ी खली तक पाई जाती है।
7. अगिनहोत्र, अगिनहोत्र जैव ऊर्जा का प्राचीनतम विज्ञान है। अगिनहोत्र तकनीक का उपयोग भारत में बहुत पुराना है। यह माना जाता है कि अगिनहोत्र कॉपर पिरामिड के पास असीम मात्रा में ऊर्जा एकत्रित हो जाती है।
8. अमृत पानी, यह सक्रिय जैविक उत्प्रेरक है। इसके अंश मात्र से भूमि सक्रिय हो जाती है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

### **मृदा सुधार तथा सुधारक :**

प्रक्षेत्र मृदा में पोषक तत्वों की कमी एवं मृदा अम्लीयता के निर्धारण के लिए विभिन्न मृदा परीक्षण का संपादन करना चाहिए। इन परीक्षणों से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि मृदा को कार्बनिक रूप से संशोधित करने के लिए मृदा में क्या उपयोग करना चाहिए।

जैविक खेती की मुख्य अवधारणा मृदा सुधार एवं पादप वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को आपूर्ति तर्क संगत तरीके से करना होता है। जैविक खेती की सफलता के लिए जैविक पदार्थों एवं प्राकृतिक खनिजों की पर्याप्ति मात्रा में आपूर्ति कर मृदा सुधार करना बहुत अधिक महत्व रखता है।



कस्पोस्ट से जलधारण की क्षमता एवं विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों की आपूर्ति क्षमता के कारण जैम्स क्रोकेट ने इसे जीम वाहक कहा है।

**बालू :** बालू भारी मृदाओं में बालू को मिलाने से मृदा के जल निकास में सुधार होता है एवं मृदा सजयीली हो जाती है जिससे जड़ों का विकास अच्छा होता है।

**कम्पोस्ट खाद :** कम्पोस्ट खाद भी एक जैविक मृदा सुधारक है। प्रक्षेत्र की जैविक मृदा को इसके द्वारा होने वाले लाभ सर्वविदित हैं। कस्पोस्ट खाद पोषक तत्वों से परिपूर्ण गहरे रंग की होती है।

**चूना :** चूना खनिन प्रक्रिया का सहउत्पाद चूना अथवा चूना पत्थर सफेद चाक चूर्ण जैसा होता है इसका उपयोग मृदा की अम्लता को कम करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। चूना में कैलशियम एवं मैग्नीशियम पाया जाता है जो मृदा पी.एच. को कम करते हैं।

**पीट मास :** पीट मास प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला हल्के भार का मास होता है। पीट मास मृदा में जल शोषक के रूप में कार्य करता है। यह मृदा की जल धारण क्षमता को नाटकीय रूप में में सुधार करता है।

**लीफ मोल्ड :** लीफ मोल्ड कस्पोस्टेड पत्तियों का मिश्रण होता है। प्रक्षेत्र में उपलब्ध पत्तियों से बिना किसी लागत का जैविक मृदा सुधारक बनाया जा सकता है।

**लकड़ी का बुरादा :** बुरादा अथवा लकड़ी के चिप्स का भूमि में उपयोग करने से मृदा जल निकास एवं मृदा संरचना में सुधार होता है। मृदा बुरादा मिलाने से मृदा में वायु संचार बढ़ता है एवं यह हल्की हो जाती है।

**हरी खाद :** हरी खाद पौधों से प्राप्त की जाती है इसके लिए पौधों के हरे भाग या सम्पूर्ण पौधे को मृदा में दबा दिया जाता है। हरी खाद में अन्य पशु उत्पादों की खादों की अपेक्षा कार्बन एवं नाइट्रोजन का अनुपात अधिक होता है।

**आच्छादन फसलें :** ऐसी फसलें जो नियमित फसलों के खेत में न होने पर हरी खाद के रूप में उगाई एवं जुताई कर खेत में मिला दी जाती है, आच्छादन फसलें कहलाती हैं। सद्यपि दलहनी फसलें हरी खाद के रूप में उपयुक्त होती हैं।

**सजीव पलवार :** सजीव पलवार का उपयोग एक पुरानी कार्बनिक प्रक्रिया है। सजीव पलवार खेत में खरपतवारों के दबाव को कम करती है एवं दलहनी सजीव पलवार मृदा में नाइट्रोजन की अतिरिक्त मात्रा को जोड़ती है।

### **जैविक कृषि में खरपतवार प्रबंधन :**

जैविक खेती में खरपतवार प्रबंधन तकनीकों की विस्तृत विवेचना से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि खरपतवार क्या है? अतः खरपतवार वह पौधा है जो कि किसी परिस्थिति में कृषि के लिए लाभदायक की तुलना में अधिक हानिकारक या क्षतिकारक होते हैं।

कृषि के प्रारम्भिक समय से ही कृषक खेतों में उपरिस्थित खरपतवारों से संघर्ष करते रहे हैं। खरपतवार, फसलों से जल, सूर्य प्रकाश, स्थान और पोषक तत्वों के लिए प्रतियोगिता करके फसल उत्पादन को घटा देते हैं। जबकि दूसरी ओर कीट व्याधियों के लिए प्रश्रयी पौधों के रूप में कार्य करते हैं। इसके अलावा फसल कटाई के समय परिपक्व खरपतवार भी साथ में आ जाते हैं।

### **खरपतवार नियंत्रण का क्रांतिक काल :**

यह फसल के जीवन चक्र का वह काल होता है जब फसल की उत्पादन हानि से बचाव के लिए फसल को खरपतवार मुक्त रखा जाता है। फसल के क्रांतिक काल के समय खरपतवारों का नियंत्रण करना इसके नियंत्रण का क्रांतिक काल कहलाता है। इस समय खरपतवारों के नियंत्रण से फसल उत्पादन का स्तर फसल को पूरे फसल काल में खरपतवार मुक्त रखने से उत्पादन स्तर के बराबर होता है।

### **जैविक खेती के विकास में आने वाले व्यवधान :**

प्रारम्भ के वर्षों में जैविक खेती के द्वारा कृषि करने पर उत्पादकता में कभी आ सकती है। उत्पादकता में आने वाली इस कमी के लिए राज्य शासन को तैयार होना होगा। यदि जैविक खेती को पद्धति पूरी ज्ञान एवं विशेषज्ञों के नियंत्रण में उपयोग में लाई जाए तो प्रथम वर्ष से ही उत्पादकता में वृद्धि देखी जा सकेगी।

जैविक खेती के विकास के लिए उठाए गए अनूठे प्रयास से न केवल राज्य अपितु सम्पूर्ण विश्व को एक नई दिशा मिलेगी।

### **जैविक खेती एवं उत्पादकता में गिरावट :**

यह एक आम प्रचलित धारणा है कि जैविक कृषि की पद्धति अपनाए जाने पर प्रारम्भ के वर्षों में उत्पादकता में गिरावट आएगी। किन्तु जैविक कृषि सम्बन्धी ज्ञान के समुचित उपयोग द्वारा मृदा को आवश्यक पोषक तत्वों की समुचित मात्रा उपलब्ध करा दी जायेगी तो उत्पादकता में कमी का प्रश्न ही नहीं उठता।



# वर्षा ऋतु में पशुओं की महामारी-गलाघोट

डॉ० एल०सी० वर्मा,

वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटवा, आजमगढ़

यह रोग जीवाणुओं द्वारा फैलने वाला धातक संक्रामक रोग है। इसमें तेज ज्वर, मुँह और गले पर शोथ वाली सूजन होती है। इसमें आमाशय और आंत में पीड़ा होती है, जिससे पशु का पेट फूल जाता है और पतला दस्त आता है। मुँह से लार और नॉक से गाढ़ा स्राव निकलता है। प्रायः यह रोग वर्षाकाल में होता है और अचानक होने पर मृत्यु हो जाती है। यह रोग गाय बैल, बछड़ा, बछिया, भैंस, पाड़ा, पड़िया, भेंड एवं बकरी में होता है। महिवंशीय पशु (भैंस, भैंसा, पाड़ा, पड़िया) विशेष रूप से अक्रांत होते हैं।

**समय एवं प्रभावित क्षेत्र :** यह रोग वर्षा ऋतु में अचानक उत्पन्न होता है और कभी—कभी पौष और माघ की वर्षा अथवा बूंदा—बांदी के बाद भी उत्पन्न हो जाता है। वैसे यह रोग कभी भी फैल सकता है किन्तु वर्षा ऋतु में इसका संक्रमण कुछ अधिक ही होता है।

यह रोग उन स्थानों में अधिक होता है जहाँ निचले स्थान में जल भरा रहता है। यह रोग जुगाली करने वाले पशु विशेषकर भैंस पर हमला करता है। कभी—कभी यह इतना भयंकर होता है कि 80—90 प्रतिशत रोग ग्रसित पशु मौत के घाट उत्तर जाते हैं।

**रोग का कारण :** यह रोग एक जीवाणु पाश्चुरैल्ला बेबीसेप्टिका द्वारा फैलता है। इसका संक्रमण मुँह और गले के भीतर चारा—दाना के द्वारा जाता है और शरीर के अन्दर रक्त प्रणाली में पहुँच कर जीवाणु अपना विकास करता है तथा रोग को फैलाता है।

**रोग फैलने का ढंग :**

1. **आहार द्वारा :** यह रोग पशुओं में उनके आहार द्वारा फैल सकता है। जब कोई रोगग्रस्त पशु चरागाह में चरने जाता है तो वहाँ की धास को दूषित कर देता है और जब स्वस्थ पशु उस दूषित धास को चरता है तो वह भी संक्रमित हो जाता है। पशु का जूठा चारा खाने से भी संक्रमण हो जाता है।

2. **श्वास नलिका द्वारा :** रोगग्रसित पशु के दूषित वायु से भी जीवाणु स्वस्थ पशु के श्वास के साथ शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

3. **परजीवी द्वारा :** यह रोग स्वस्थ पशुओं में मकिखयों, मच्छरों तथा चीचड़ियों द्वारा भी फैलता है।

**रोग की अवधि :** रोग के लक्षण प्रायः 1 से 3 दिन के भीतर प्रकट हो जाते हैं। पशु के गले पर जब सूजन हो जाती है तो लक्षण प्रकट होने में अधिक समय लगता है, कभी—कभी यह अवधि 2—5 दिन भी हो सकती है।

**रोग के लक्षण :** रोगग्रस्त पशु में इस रोग की तीन अवस्थायें होती हैं—

1. **तीव्र रक्त पूर्तित अवस्था :** प्रायः पशु चारागाह से चरकर आता है और कान के नीचे की ओर लटकाकर बगैर जुगाली किये एक स्थान पर सुस्त खड़ा हो जाता है। पशु का तापक्रम एकाएक बढ़ कर 104—108 डिग्री फा. तक पहुँच जाता है।

2. **त्वचा अथवा शोथ रूप :** रोग की इस अवस्था में जीभ और गले की सूजन अधिक बढ़ जाने पर रोगी को सांस लेने में कठिनाई होती है और वह धुर्धुर की आवाज करने लगता है, जीभ काफी बाहर निकल आती है। धुर्धुर की आवाज काफी दूर तक सुनी जा सकती है। अन्त में पशु बेचैन होकर गर्दन मरोड़कर जमीन पर गिर पड़ता है। फलस्वरूप 24—36 घण्टे में मृत्यु हो जाती है।

**3. फुफ्सीय या अंश अवस्था :** सांस में घड़घड़ाहट अथवा खड़खड़ाहट की आवाज दूर से सुनायी देती है। सूजन सख्त होती है और छूने पर गरम तथा दबाने पर दुखती नहीं है और मुँह खुला रहता है।

**रोग के लक्षण एक नजर में :**

- ◆ प्रथम तापकम 104—108 डिग्री फारेनहाइट तक।
- ◆ चुस्त, डिप्रेशन, अरुचि एवं एक स्थान पर खड़ा होना।
- ◆ अधिकांश में सिर, गला एवं गर्दन में सूजन।
- ◆ सूजन सख्त, गरम, एवं पीड़ायुक्त।
- ◆ मुँह से लार का बहना एवं निगलने में कष्ट।
- ◆ प्रायः जीभ पर सूजन।
- ◆ जीभ दाँतों के बीच में अथवा मुँह के बाहर लटकी हुई।
- ◆ सॉस लेने में कष्ट।
- ◆ नॉक से कभी—कभी रक्त भी।
- ◆ पहले कब्ज बाद में दस्त।
- ◆ गले में गड़गड़ाहट अथवा घुर्ग—घुर्ग की आवाज।
- ◆ आँखों से आँसू बहना एवं कीचड़ आना।
- ◆ श्वास में कष्ट के साथ निमोनिया का होना।
- ◆ त्वरित चिकित्सा के अभाव में मृत्यु।

**चिकित्सा**

- ◆ पोटेशियम परमैगनेट पानी में मिलाकर कई बार पिलायें अथवा पोटेशियम परमैगनेट एवं कपूर की बराबर मात्रा में प्रति 8 घण्टे में दें।
- ◆ पोटेशियम आयोडाइड 1 ग्राम को 30 मिली. डिस्टिल वाटर में मिलाकर त्वचा में इंजेक्शन दें।
- ◆ बीमारी का जोर कम करने के लिये कार्बोलिक एसिड पानी में मिलाकर पिलायें।
- ◆ इंजेक्शन टेरासाइक्लिन (टेरामाइसीन / ऑक्सी—टेरासाइक्लिन) 60 मिली. तथा इंजेक्शन बेटनीसॉल 6 मिली दोनों मिलाकर नस में आई.वी. दें।

**अनुभूत चिकित्सा :**

- ◆ खाने के लिये पशु को जौ का दलिया एवं पानी प्रचुर मात्रा में दें।
- ◆ रोगी को स्वच्छ तथा खुली हवा में रखना।
- ◆ सहायक चिकित्सा के रूप में सूजन की तीव्र सेंक अथवा गर्म लोहे से सूजन को भलीभाँति दागना।
- ◆ आराम मिलने पर उपरोक्त चिकित्सा के साथ—साथ लाइवोल 50 ग्राम गुड़ के साथ 5 दिन तक चटावें एवं न्यूराक्सिन वी. 10—12 मिली. मांस में 2—3 दिन तक लगावें।

**विशेष :** अधिक सूजन की स्थिति में उपरोक्त चिकित्सा के साथ—साथ इन्जेक्शन इसजीपाइरीन 10—20 मिली. मांस में 2—3 दिन तक लगायें।

### **सावधानी :**

- ◆ यदि रोगी पशु की जीभ काफी बाहर निकल आये तो उसकी चिकित्सा न करें।
- ◆ पेट फूलने की स्थिति में बायी कोख पर तारपीन, हींग गर्म पानी के साथ मिलाकर हाथ से खूब मालिश करें। मालिश मुट्ठी बाँधकर आगे से पीछे को।
- ◆ रोग ठीक होने पर पशु को एकाएक चारा/घास आदि खाने को न दें, उसे कम से कम एक सप्ताह तक दूध दलिया पर ही रखना चाहिये।

**अति धातक स्थिति में :** पशु के श्वास लेने में अधिक कठिनाई होने पर ट्रैकियोटामी की एकमात्र चिकित्सा है।

**रोकथाम :** रोग के बचाव हेतु – टीकाकरण

**एच. एस. एंटी सीरम – गाय/भैंस में 10–20 मिली.** एवं भेड़ों में 5 मिली. सबकुटैनियस विधि से देना चाहिए।

**एच. एस. वोथ या एलम प्रेसिपिटेड वैक्सीन – गाय/भैंस में 5–10 मिली.** एवं भेड़ों में 3–5 मिली. सबकुटैनियस विधि से देना चाहिए।

**एच.एस. असयल एडजुवेन्ट वैक्सीन :** गाय/भैंस में 3 मिली. एवं भेड़ों में 1 मिली. मांसपेशीगत विधि से देना चाहिए।

**आवश्यक सुझाव एवं निर्देश :**

- ◆ रोगग्रस्त पशुओं को अन्य पशुओं से अलग रखें।
- ◆ स्वस्थ पशुओं को बरसात शुरू होने से पहले इस रोग का टीका एच. एस वैक्सीन 5 मिली. त्वचा में सामूहिक रूप से लगवा लेना चाहिये।
- ◆ वैक्सीन का टीका लगवा लेने से पशु में 6 माह या अधिक समय तक रोग रोकने की शक्ति आ जाती है।
- ◆ गांव के सभी स्वस्थ पशुओं को भी एचएस. एण्टीसीरम 15 मिली. त्वचा के नीचे इन्जेक्शन देना चाहिये। तत्पश्चात जब तक बीमारी का प्रकोप कम न हो, प्रति 10 दिन बाद सीरम का इंजेक्शन देते रहना चाहिये। सीरम देने के 15 दिन बाद पशुओं को वैक्सीन का टीका देना अधिक उपयुक्त रहता है।
- ◆ रोग से मरे हुए पशुओं को 6 फुट गहरा जमीन से गाढ़ देना चाहिये।
- ◆ पशुओं को बरसाती घास नहीं खिलाये एवं गड्ढो, तालाब, पोखरों का गन्दा पानी भी नहीं पिलाना चाहिए।
- ◆ पशुओं का आहार पौष्टिक तथा स्वादिष्ट होना चाहिये। उसके रहने का स्थान साफ—सुथरा रहना चाहिये।
- ◆ जिस स्थान पर पशु मरा हो, उस स्थान पर मिट्टी का तेल डालकर जला देना चाहिये अथवा उस स्थान की सफाई कीटाणुनाशक औषधि से करना चाहिये।

